जिन और जिनशासन-माहात्म्य

• उप प्रवर्तक श्री सुकनमल (श्रमण संघ सलाहकार)

जिन शासन माहात्म्यं प्रकाश स्यात् प्रभावना।

जिन शासन की महिमा के प्रकाशन करने को प्रभावना कहते हैं। उक्त सन्दर्भ में प्रश्न उपस्थित होता है कि जिन कौन और जिन शासन किसे कहते हैं और उनकी क्या महिमा है? शाब्दिक व्युत्पत्ति के अनुसार इनका अर्थ किया जाय तो जयतीति जिनः तस्य शासनम् जिनशासन जो जीतता है वह जिन और उसका शासन जिन शासन है। उसकी विशेषताओं के कथन करने को महिमा कहते हैं। लेकिन इस सामान्य अर्थ को ग्रहण करके प्रचार-प्रसार की ओर अग्रसर हो जायें तो ऐसे सभी सामान्य व्यक्ति जिन कहलाते के पात्र माने जायेंगे जिन्होंने अपने से निर्बल व्यक्ति को पराजित किया हो और उसकी झूठी सच्ची विरुदावली गाने लगें। लेकिन आप ही नहीं साधारण से साधारण व्यक्ति भी न ऐसा मानेगा और न कुछ करने के लिए तैयार होगा। अतएव यह उचित होगा कि हम व्यंजना और लक्षणा विधि का अनुसरण कर यथार्थ जिन और उसके शासन को स्पर्श करें।

जिन का स्वरूप - "जयति राग द्वेषादि शत्रुन् इति जिनः"

जो राग-द्वेष आदि आत्मा के शत्रुओं को जीतता है उसे जिन कहते हैं। राग-द्वेष आदि आत्मा के शत्रु क्यों कहलाते हैं जबकि उनका भी अवस्थान स्वयं आत्मा है? इसका उत्तर यह है कि वे आत्मा के मूल स्वभाव नहीं हैं। मूल स्वभाव तो आत्मा का अनन्त ज्ञान दर्शन सुख आदि रूप है। वे सब उसके असाधारण धर्म हैं। संक्षेप में इसी बात को इस रूप में कहा गया है -जीवो उवयोग लक्खणं- जीवन का लक्षण उपयोग है। उपयोग वह चैत्यन्यानु विधायी परिणाम है जो ज्ञान दर्शन आदि अनन्त गुणों का समुदाय है।

यद्यपि राग-द्वेष आदि आत्मा से सम्बद्ध है तथापि वे आगन्तुक हैं पर हैं। इसीलिए उनको वैभाविक भाव कहा जाता है और वैभाविकता के कारण उनको आत्मा का शत्रु कहा गया है।

राग-द्वेष आदि को आत्मा का शत्रु मानने का एक कारण यह भी है कि ये जीवन के लिए जन्म मरण रूप संसार के हेतु हैं जिससे आत्मा अपने निज स्वरूप और त्रिलोक व त्रिकालवर्ती जीव आदि पदार्थों को देख, जान नहीं पाती है, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी नहीं कहला सकती, निराबाध सुख का अनुभव नहीं कर सकती है। गीता में भी उक्त आशय को अपने शब्दों में इस प्रकार कहा है जिससे शब्द भिन्नता होते हुए भी अन्तर्निहित भाव प्रायः समान है -

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णा सङ्गसमुद्भवम्।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्म सङ्गेन देहिनाम्॥१४॥७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तमस्त्वज्ञानजं बिद्धि मोहनं सर्व देहिनाम्।
प्रमादालस्य निद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत॥१४॥८॥

रजो गुण रागात्मक है और उसकी तृष्णा के कारण उत्पत्ति होती है वह जीवों को कर्म बन्ध कराता है। तमो गुण अज्ञान जन्य है, सब जीवों को मोहित (स्वरूप ज्ञान के विचलित) करने वाला है,आलस्य-निद्रा-प्रमाद आदि इसके प्रत्यक्ष बाह्य चिह्न हैं और कर्म बन्ध का कारण है। इसलिए जो आत्मा इन राग-द्वेष-मोह आदि कर्म बन्ध के कारण रूप सुभटों को जिनसे चातुर्गतिक रूप संसार में गति से गत्यन्तर में भटकना पड़ता है -जीतकर काल चक्र अर्थात संसार भ्रमण से सर्वथा मुक्त हो गया है, वर्तमान भव के बाद दूसरा भव धारण नहीं करता है उसको जिन कहते हैं आत्माएं अनन्त हैं और प्रत्येक आत्मा जिन हो सकती है अतएव जिन अनन्त हैं।

जिन के विविध नाम - इन जिन आत्माओं के अनन्त असाधारण गुणों का आस्पद-निधान होने से अनन्त नामों से सम्बोधित किया जा सकता है। उनमें से विभिन्न विशेषताओं का समन्वय करके शास्त्रों में एक हजार आठ नामों का उल्लेख किया गया है। परन्तु उन नामों की यहाँ विशद व्याख्या किया जाना सम्भव नहीं होने से सर्वजनगम्य कुछ एक नामों का उल्लेख करते हैं। जैसे - स्वयंभू, ईश्वर, शिव, अरिहन्त, महादेव, परमेश्वर, त्रिलोचन शंकर, रुद्र विष्णु पुरुषोत्तम, ब्रह्मा बुद्ध सुगत आदि। ये सभी उनमें पाये जाने वाले गुणों के कारण सार्थक नाम हैं और जिनात्मा के गुणों का बोध कराते हैं। इन नामों से किसी व्यक्ति विशेष का नहीं किन्तु उन महान आत्माओं का बोध होता है जो कर्म शत्रुओं के विजेता बनकर शुद्ध आत्म स्वरूप में लीन हैं। इनको किसी व्यक्ति विशेष का नाम मानना योग्य नहीं।

विविध नामों की सार्थकता - ऊपर जिनात्माओं के जो कुछ सम्बोधन परक नामों का उल्लेख किया है यहाँ संक्षेप में उनमें गर्भित आशय को स्पष्ट करते हैं -

स्वयंभू - जिनको स्वयं समस्त विश्व को युग पद देखने जानने वाला अविनश्वर केवल ज्ञान, केवल दर्शन उत्पन्न हुआ है। उनको स्वयंभू कहते हैं।

ईश्वर - जिन्होंने केवल ज्ञान रूप परम ऐश्वर्य एवं परम आनंद रूप सुख के स्थान अर्थात मोक्ष पद को प्राप्त कर लिया है उन कृत-कृत्य आत्माओं को ईश्वर कहते हैं।

शिव - जिन्होंने आकुलता रहित परम शान्त और परम कल्याण रूप अक्षय शिव पद को प्राप्त कर लिया है वे शिव हैं।

अरिहंत - जो शारीरिक विकारों से रहित हैं और आत्म स्वरूप दर्शन के घातक चार घातिक कर्म- ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय व अन्तराय का क्षय कर चुके हैं, अनन्त ज्ञान-दर्शन-सुख और वीर्य से परिपूर्ण हैं और परम वीतरागता को प्राप्त हैं वे अरिहंत हैं।

महादेव - जिन महापुरुषों ने महा मोह आदि दोषों का सर्वथा उन्मूलन कर दिया है और जो संसार रूप महा सागर को पार कर चुके हैं वे देवाधिदेव महादेव कहलाते हैं।

परमेश्वर - जो अपने परम विकास के कारण पूजातिशय, ज्ञानातिशय आदि अतिशयों से सम्पन्न होने से ऐश्वर्य की परम कोटि में स्थित हैं, वे परमेश्वर कहलाते हैं।

त्रिलोचन - ज्ञानावरण कर्म का निःशेष रूप से क्षय हो जाने से जिनके ज्ञान रूप अलौकिक तीसरे नेत्र में समग्र त्रिलोक प्रतिबिम्बित होता है उन्हें त्रिलोचन कहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शंकर - जिन्होंने घोर संसार सागर में निमग्न प्राणियों के उद्धार के लिए सुख शान्ति प्राप्ति के उपायों का उपदेश दिया उन्हें शंकर कहते हैं।

रुद्र - जिन्होंने शुक्ल ध्यान रूपी अग्नि द्वारा रौद्र (क्रूर) कर्म जाल को भस्म कर दिया है, उन्हें रुद्र कहते हैं।

विष्णु - जिन्होंने द्रव्य पर्याय रूप त्रिलोक को अपने ज्ञान के प्रकाश से व्याप्त कर दिया है उन्हें विष्णु कहते हैं।

पुरुषोत्तम - जिन्होंने अपने पौरुष का सर्वश्रेष्ठ फल प्राप्त कर लिया है और दूसरों को भी वैसा पुरुषार्थ करने का उपाय बताते हैं उन्हें पुरुषोत्तम कहते हैं।

ब्रह्मा - जो सम्पूर्ण परिग्रहों से रहित हैं जिनकी देशना सर्व भाषाओं में परिणत हो जाती है, समोवसरण में जिनके चार मुख दिखाई देते हैं और काम विकारों से रहित हैं। उन्हें ब्रह्मा कहते हैं।

बुद्ध - मतिश्रुत और अवधि इन तीन ज्ञान सहित उत्पन्न हुए और मोक्ष मार्ग में स्वयं प्रबुद्ध हैं अर्थात जिन्हें मोक्ष मार्ग पर किसी दूसरे ने नहीं चलाया है किन्तु स्वयं चले हैं उन्हें बुद्ध कहते हैं।

सुगत - जिन्होंने सर्व प्रकार के द्वन्दों से रहित आत्म स्वभाव से उत्पन्न हुए परम निर्वाण रूप स्थान को प्राप्त कर लिया है उन्हें सुगत कहते हैं।

इसी प्रकार उन सर्वज्ञ सर्व दर्शी जिन भगवान के अन्य सार्थक नाम जानना चाहिए जिनका यहाँ उल्लेख नहीं किया गया है। अतः उप संहार के रूप में उनका कुछ संकेत करने के लिए श्री मानतुंगाचार्य के दो छन्दों को यहाँ उद्घृत करते हैं -

त्वामव्ययं विभुमचिंत्यमसंख्यमाद्य,
ब्रह्माणमीश्वरमनंतमनङ्गकेतुम।
योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं
ज्ञानस्वरुपममलं प्रवदंति संतः॥

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित! बुद्धि बोधात्,
त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रय-शंकरत्वात्।
धाताऽसि धीर! शिवमार्ग विधेर्विधानात्,
व्यक्तं त्वमेव भगवन! पुरुषोत्तमोऽसि॥

मुमुक्षुओं के लिए नमस्करणीय - ये जिनत्व को प्राप्त अनन्त आत्म गुणों के अभिव्यंजक स्व-परावभासी ज्ञान प्रकाश से ज्योतिर्मान चिदानन्द लीन जिन अपनी वीतरागिता के कारण किसी का इष्टानिष्ट नहीं करते हैं। परन्तु प्रत्येक मुमुक्षु के अन्तर में एक नांद गूंजता रहता है कि मैं भी अपने आत्म विकास के परम लक्ष्य को प्राप्त करूँ। इसके लिए वह साधना में संलग्न हो जाता है। कभी वह अपने अन्तर को परखता है प्रवृत्तियों का लेखा जोखा करता है और आत्म आलोचना करते-करते उल्लास के क्षणों में डूब जाता है तो भक्ति वश मुख से बोल निकल पड़ते है -

नमुत्थुणं! अरिहंताणं भगवंताणं-सयं संबुद्धाणं

पुरिसुत्तमाणं अप्पडिहय-वर-नाण-दंसणधराणं विअट्टछउमाणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिणाणं बुद्धाणं सव्वन्नूणं सव्वदरिसीणं सिवमयल -
मरुअ-मणंत-मक्खय मव्वाबाह मपुणरावित्ति सिद्धिगइनाम
धेयं ठाणं संपत्ताणं (तथा) सिद्धिगइनामधेयं ठाणं

संपाविउकामाणं नमो जिणाणं जियभयाणं।

(नमोत्थुणं का समग्र पाठ पाठक गण स्वयं समझ लें विस्तार भय से आवश्यक संक्षिप्त पाठ का ही यहां उल्लेख किया है)।

जिनत्व की प्राप्ति कब? - जन्म-मरण रूप संसार में संसरण करने वाले सभी जीव जिनत्व को प्राप्त करने के अभिलाषी हैं। लेकिन यह सभी जानते हैं कि सुदृढ़ नींव भव्य भवन-निर्माण की आधार शिला है। अतएव सर्व प्रथम जिनत्व प्राप्ति की सामान्य भूमिका का दिग्दर्शन कराते हैं। इसके लिए श्री मद् भगवद् गीता के निम्नांकित श्लोक विशेष उपयोगी हैं -

सम दुःख सुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
तुल्य प्रिया प्रियो धीरस्तुल्य निन्दात्म संस्तुतिः॥
निर्मान मोहा जितसङ्ग दोषा,
अध्यात्म नित्या विनिवृत्त कामाः।
द्वन्दैर्विमुक्ताः सुख दुःख संज्ञैः,
गच्छन्त्यमूढ़ाः पदमव्यम तत्।

गीता १४।२४ तथा १५।५

अर्थात् जो दुःख और सुख में समभाव रखता है, हर्ष विषाद का लेश मात्र भी स्पर्श नहीं करता, कंचन कंकड को एक रूप समझता है, निन्दा स्तुति में सम रहता है और स्व स्वरूप में स्थिर रहता है तथा जिसने मान मोह को जीत लिया है संगदोष (लोभ) पर विजय प्राप्त कर ली है। जो आत्मा में रमण करता है। जिसकी काम भावना प्रक्षीण हो गई है। जो संकल्प विकल्पों से विलग है ऐसा अमूढ़ (सजग व्यक्ति) अव्यय (जिन) पद प्राप्त करने का अधिकारी है।

ऐसा अधिकारी व्यक्ति परम शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर ने का उपाय करता है तभी जिनत्व की प्राप्ति सम्भव है। सभी आत्म वादी दार्शनिकों ने, सभी जिनत्व प्राप्ति के अभिलाषियों ने जिनत्व प्राप्ति के मार्ग पर स्थितों ने यह माना है कि सम्यग् दर्शन-ज्ञान चारित्र कर्म शत्रुओं पर विजय प्राप्ति के साधन हैं। इन्हीं को किसी ने ज्ञान और क्रिया के रूप में कहा है। किसी ने भक्ति को, किसी ने तप को, इनके साथ जोड़कर अपनी-अपनी दृष्टि से साधनों की संख्या बतायी है। जो शाब्दिक व कथन शैली की भिन्नता है। लेकिन इतना स्पष्ट है कि सम्यग दर्शन आदि तीनों की पूर्ण स्थिति बनने पर कर्म क्षय होता है और तब जिनत्व की प्राप्ति होती है।

कर्म शत्रु क्यों है? - कर्म शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वालों को जिन कहते हैं तो प्रश्न उठता है कि वे शत्रु क्यों है और उनका कार्य क्या है? इसका उत्तर यह है कि प्रतिपक्षी किसी का विकास नहीं होने व करने देता है। यही स्थिति कर्म की है। वह आत्मा के मूल स्वभाव को प्रकट करने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में बाधक है। आत्म शक्तियाँ अनन्त हैं। अतएव कर्म शत्रुओं की संख्या भी अनन्त है। परन्तु उन सबका आत्मा के आसाधारण गुणों को जिनसे सामान्य व्यक्ति को भी आत्मा के गुण स्वभाव का बोध हो सकता है, ध्यान में रखकर इन आठ नामों में उनका समावेश किया है -ज्ञानावरण दर्शनावरण, वेदनीय मोहनीय आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय इमें ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय और अन्तराय साक्षात आत्म गुणों के विघातक होने से घाति और वेदनीय आदि शेष चार कर्म पूर्ण रूप में आत्म गुणों की अभिव्यक्ति न होने देने में सहकारी कारण होने से आघातिक कहलाते हैं इनमें भी मोहनीय कर्म सबसे बलवान है सब कर्मों का राजा है। क्योंकि वह आत्मा को शान्त प्रशान्त स्थिति में स्थिर नहीं होने देता है जिससे वह स्वोन्मुखी प्रवृत्ति नहीं कर पाती है। इसका उन्मूलन हो जाने पर शेष कर्म निर्बल निशक्त होकर नष्ट हो जाते हैं। जिसकी प्रक्रिया इस प्रकार है - सर्व प्रथम मोहनीय कर्म का क्षय होता है। उसके बाद अन्तर्मुहूर्त के अनन्त ज्ञान-दर्शन-वीर्य के विघातक ज्ञानावरण दर्शनावरण अन्तराय यह तीन कर्म नष्ट होते हैं। इससे अनन्त ज्ञान दर्शन सुख वीर्य की परमावस्था को प्राप्य आत्मा को सर्वज्ञ सर्वदर्शी जिन अरिहन्त पद की प्राप्ति हो जाती है। जिसको संक्षेप में संयोगि जिन नाम से भी कहा जाने लगता है।

तदनन्तर शेष आयु आदि चार कर्मों का सद्भाव रहने तक वे सयोगी जिन धर्म देसना द्वारा अपनी अनुभूतियों का दिग्दर्शन कराते रहते हैं और इनका भी क्षय होने पर पूर्ण जिनत्व को प्राप्त कर सिद्ध बुद्ध मुक्त हो लोकाग्र में स्थित हो अनन्त काल तक स्वात्म गुणों में रमण करते रहते हैं। जन्म-जरा-मरण रूप संसार में पुनरागमन नहीं होता है। सम्पूर्ण जिनत्व को प्राप्त ये आत्माएं हम सबके लिए वन्दनीय हैं।

जिन के भेद - निश्चयनय की दृष्टि से जिनके भेद नहीं हैं। क्योंकि आत्म गुण घातक कर्मों के क्षय हो जाने से जिन आत्माओं ने स्वाभाविक चेतना प्राप्त कर ली है, आत्म स्वरूप में रमण करती हैं, वे जिन हैं। लेकिन जब सरलता से समझने के लिए व्यवहार नय की दृष्टि का सहारा लेते है तब विभिन्न प्रकार से भेदों की कल्पना कर ली जाती है जैसे -सकल जिन देश जिन। जो आत्मा गुण घातक कर्मों का क्षय कर चुके है वे सकल जिन हैं अरिहन्त और सिद्ध ये सकल जिन हैं आचार्य उपाध्याय व साधु कषाय इन्द्रिय विषय और मोह को जीतने के मार्ग पर अनुगमन करने वाल होने से देश जिन कहलाते हैं।

अथवा योग सहित केवल ज्ञानी सयोगी जिन और योग रहित केवल ज्ञानी अयोगी जिन कहलाते हैं। सयोगी जिन सयोग केवली नामक तेरहवें गुण स्थान और अयोगी जिन आयोग केवली नामक चौदहवें गुण स्थान- वर्ती हैं। कहीं कहीं सकल परमात्मा और निकल परमात्मा नाम भी जिनों के लिए प्रयुक्त हुए है। अथवा जिन के तीन भेद हैं -

१. अवधि ज्ञानी जिन २. मनः पर्याय ज्ञानी जिन और ३. केवल ज्ञानी जिन। केवल ज्ञानी जिन तो राग द्वेष आदि संसार के कारणों का पूर्ण रूप से क्षय कर चुके हैं, वे साक्षात जिन है। अवधि ज्ञानी और मनः पर्याय ज्ञानी प्रत्यक्ष आत्म जन्म ज्ञान वाले होते हैं। इसलिए वे जिन सरीखे होने से उपचारतः जिन कहलाते है। इसके अतिरिक्त अन्यान्य प्रकार से जिनके भेदों की कल्पना की जा सकती है। शास्त्रों में भेद करने के कारणों का उल्लेख करने के साथ उनके अपने प्रकार से भेद किये हैं किन्तु विस्तार के भय से उन सबका यहाँ उल्लेख करना सम्भव नहीं है।

जिन भगवान के अतिशय - जिन भगवान अनन्त गुणों के धारक होने से उनके अतिशयों की संख्या भी उतनी होगी जिससे व्यक्ति आश्चर्य चकित हो अथवा असंभव संभव रूप बने उसे अतिशय कहते हैं। सिद्ध जिनों में अतिशय की परिकल्पना नहीं की जा सकती है। वे तो निराकार रूप से सत् चित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आनन्द घन के रूप में अनंत काल तक रहेंगे। परन्तु जो अरिहंत सयोगी केवली जिन हैं, उनके चौंतीस अतिशयों की संख्या मानी जाती है। जिनके मूल में तीन भेद हैं। १. सहज अतिशय २. कर्म क्षय जन्म अतिशय ३. देवकृत अतिशय

जिन भगवान की देशना - जिन भगवान वीतरागता के कारण किसी का भला बुरा करने की भावना से रहित है। वे कृत-कृत्य हैं। परन्तु सयोग अवस्था में रहते अपनी जिन अनुभूतियों को वाणी द्वारा व्यक्त करते हैं, शास्त्रों में उसके लिए देशना शब्द का प्रयोग किया गया है। जो प्राणी मात्र के लिए हितकारी सारगर्भित और अर्थ गांभीर्य से सम्पन्न होती है। औपपातिक सूत्र में उस देशना का संकलन किया गया है। जिसके कुछ एक मुख्य बिन्दु इस प्रकार है - जीवादि नव तत्वों का उपदेश, जीव का स्वरूप, उपयोग के भेद प्रभेद, जीव के मात्र लोक स्वरूप कर्म बंध के कारणों का निरुपण, इन्द्रिय जय के उपाय, आत्मानुशासन की उपाय धर्म का स्वरूप और उसके फल का वर्णन मिथ्यात्य व सम्यक्त्व का स्वरूप और उनके भेद का फल आदि श्रावक धर्म श्रमण धर्म मोक्ष मार्ग का वर्णन आदि। विशेष जानकारी के लिए आगमों को देखिये।

जिन शासन - जिन की यही देशना जिन शासन कहलाती है। ऊपर जिस देशना का संकेत किया गया है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इसमें शासक और शासित का भेद नहीं है किन्तु शासन व्यवस्था की नीति आत्मानुशासन है। स्वयं का शासन स्वयं करो। उस शासन में दंड व्यवस्था दूसरे के द्वारा लादी नहीं जाती है। स्वयं प्रायनिश्चित करना ही उसका आधार है। इसका क्षेत्र नदी, पहाड़ों या समुद्रों से घिरा हुआ नहीं है अपितु अनन्त आत्माओं में व्यापक है उसकी छत्र छाया में विश्राम करने वाले हजारों, लाखों, करोड़ों नहीं अनन्त जीव है। सबको जीने का अधिकार है। वर्ग जाति सम्प्रदाय या समाज आदि किसी प्रकार का भेद भाव नहीं है। और समता के धरातल पर सब को अपना विकास करने का अधिकार है। संसार सागर में निमग्न अथवा भवाटवी में भटकने वाले प्राणियों को अपना उद्धार करने की प्रेरणा देने वाला है। सुख रूप उस स्थान को प्राप्त कराने वाला है। अभ्युदय (लौकिक उन्नति और निःश्रेयस) (लोकोत्तर अतीन्द्रिय सुख) का साधन है।

जिन शासन का दूसरा नाम जिन तीर्थ भी है। सम्यग्ज्ञान, दर्शन चारित्र के समूह को तीर्थ कहते हैं। यह तीर्थ संसार समुद्र से जीवों को तिराने वाला है। तैरने वालों की योग्यता स्थिति को ध्यान में रखकर उसके चार प्रकार माने गये हैं १. साधु, २. साध्वी, ३. श्रावक, ४. श्राविका।

अहिंसा आदि पंच महाव्रत धारी सर्व विरक्त पुरुष को साधु और स्त्री को साध्वी कहते हैं। इसी प्रकार देश विरत पुरुष श्रावक और स्त्री श्राविका कहलाती है।

जिनशासन की विशालता - उपर्युक्त संकोतों से जिनशासन की विशालता उदारता पर विशेष प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं रह जाती है। फिर भी कुछ और स्पष्टता के लिए जिनशासन की विशालता का संकेत करते हैं।

जिनके द्वारा बताये गये मार्ग को अंगीकार करने वाला कोई भी व्यक्ति जिनानुयायी बन सकता है। जिन शासन का नागरिक बन सकता है। इसमें देश, काल, जाति आदि बाधक नहीं बन सकते हैं। सिर्फ एक शर्त है कि भिन्न वेश की भिन्न क्रिया भिन्न परम्परा के होते हुए भी उनको चित्तोपशमन की साधना में रत रहना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपि भिन्न क्रिया भिन्न वेषा भिन्न परम्परा।
वित्तोपशम संलग्नाः संति जैनेन्द्र शासने॥

आत्मा की सर्वश्रेष्ठ अवस्था सिद्धावस्था है अथवा यह भी कहा जा सकता है कि सिद्धावस्था जीव मात्र के पुरुषार्थ की चरम निष्पत्ति है। इसको प्राप्त करने में अन्य लिंग धारण करने से कोई बाधा नहीं पड़ती है। वशर्ते व्यक्ति जितेन्द्रिय हो, शान्त दान्त हो उसने कषायों को जीत लिया हो विस्तार से उसी को स्पष्ट समझने के लिए यशोविजयजी और अध्यात्मसार की वाणी सुनिये -

जितेन्द्रिया जित क्रोधा दान्तात्मो महायशाः।
परमात्म गतिं यान्ति विभिन्नै रपिवर्त्म भिः॥
अन्य लिंगादि सिद्धानामाधार स मतैव हि।
रत्नत्रय फल प्राप्तिर्यथा स्याद भाव जैनसा॥

इतना ही नहीं जिन शासन में किसी वेष को धारण करने से अथवा किसी विशेष वाद में निपुणता प्राप्त कर लेने से मोक्ष प्राप्ति संभव नहीं मानी है किन्तु एक मात्र कषाय मुक्ति को ही मोक्ष प्राप्ति का साधन माना है -

नासाम्बरत्वे, न दिगम्बरत्वे न तत्वदे न चतर्क का दे।
न पक्ष सेवा श्रयजेन मुक्तिः कषाय मुक्ति किल मुक्ति देव।

जिनशासन में इसको पूज्य माना जाये और उसको पूज्य न माना जाये, यह संकीर्णता भी नहीं है और न अमूक को पूज्य माने जाने का दुराग्रह है, किन्तु यह कहा गया है कि दोष-कलुष से मुक्त महानुभाव चाहे जिस मत के अनुयायी हों और जिस किसी भी नाम से जाने जाते हैं, वे वन्दनीय हैं। प्रसिद्ध जैनाचार्य श्री हरिभद्र सूरि ने इसी बात को और अधिक स्पष्ट करते हुए यहाँ तक कह दिया है -मुझे न तो महावीर के प्रति कोई पक्ष पात है, राग है और न कपिल आदि महर्षियों के प्रति द्वेष है। मैं तो गुण पूजक हूँ। अतएव जिस किसी के वचन युक्ति संगत हैं, वे ही आदरणीय हैं वन्दनीय हैं -

पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेष कपिला दिषु।
युक्ति मद् वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः॥

कलि काल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य एवं अन्य आचार्यों ने हरिभद्र सूरि के विचारों की और अधिक व्याख्या करते हुए कहा है -

भव बीजांकुर जनना रागाद्या क्षय मुपागता यस्य।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्त स्मै॥
तं वंदे साधु वंद्य सकलागुण निधिं ध्वस्त दोषं द्विषंतं।
बुद्धं वा वर्धमानं वा शत दल निलयं केशवं वा शिवंवा॥

इसका अर्थ सुगम है लेकिन इनमें भव बीजाकुर क्षय मुपागता यस्यः और ध्वस्त दोषं द्विषन्तं यह दो पद महत्व पूर्ण है जो जिन और जिन शासन की विशेषता का संकेत करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिन शासन के महामंत्र नवकार से भी यह बात और अधिक स्पष्ट हो जाती है। उसमें किसी के प्रति पक्षपात नहीं किया गया है। किन्तु गुणों की मुख्यता को आधार बना कर अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुओं को नमस्कार किया है।

इस प्रकार जिन और जिन शासन के प्रसंग में आवश्यक अंश पर प्रकार डालने के बाद अब उपसंहार के रूप में जिन शासन की लोक मंगल की भावना का संकेत करते हैं।

जिनशासन की लोक मंगल भावना - जिन शासन के दृष्टिकोण में जितनी उदारता और विशालता की भावना है, उतनी ही लोक मंगल की कामना भी समाई हुई। प्राणिमात्र के कल्याण की कामना करते हुए सदैव यह चाहा- सर्व पूजा क्षेम कुशल पूर्वक सुख में अपना जीवन व्यतीत करें। शासक राजा धार्मिक आचार विचार वाले और बलशाली हो, जिससे स्वचक्र और परचक्र का भय न रहे समयानुसार मेघ वर्षा होती रहे। रोग महामारी का उत्पात न हों। सभी को शान्ति देने वाला जैनेन्द्र धर्म चक्र प्रवर्तमान रहे दिन दूना रात चौगुना प्रभावशाली हो जयवंता रहे। शास्त्राभ्यास के प्रति सभी की रुचि बढ़े। सज्जन पुरुषों की संगति का सबको सुयोग मिले। गुणीजनों के गुणानुवाद के स्वर कानों में गुंजते रहे। दोष दर्शन की कभी भी वृत्ति न हो। सबके साथ हित-मित प्रिय वाणी बोलने का ध्यान रहे और प्राणि-मात्र को आत्म विकास के अवसर प्राप्त हों, अपने परम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करें।

इस प्रकार की मांगलिक संपत्ति का निधान होने के कारण ही जिन शासन की उपादेयता और सार्वभौमिकता की सभी ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की है और विश्व शान्ति के लिए सर्वोत्तम साधन माना है।

आशा है कि हम आप सभी जिन शासन के प्रति श्रद्धा भक्ति रखने वाले सर्व जन हिताय, सर्व जन सुखाय जिन शासन के प्रसार में तत्पर रहकर -

'जैनं जयतु शासनम'

के आदर्श को साकार बनाकर स्व पर के कल्याण के लिए मंगल प्रयास करें और अनन्त पुण्यों से प्राप्त इस मानव जीवन को सफल बनाये। **इति शुभम्**

* * * * *

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org